THE ECONOMIC TIMES

Date: 19-11-25

LPG From ~~Russia~~ US With Love

Energy a low-hanging fruit for trade reset

ET Editorial

India's purchase of LPG from the US has an impact on rebalancing trade between the two countries and on ongoing tariff negotiations. Although the deal is not part of trade talks, it does facilitate their resolution. India and the US are trying to hammer out a deal that addresses Washington's concerns over tariffs and dependence on Russian energy exports. The Trump regime has slapped 25% reciprocal tariffs and an additional 25% penal duty over Russian crude oil imports. Energy imports from the US, of which LPG purchase represents a small but significant beginning, address both the US concerns and should help with tariff revocation. Indian exports to its largest trading partner could recover from the tariff hit they had taken earlier in the year as trade negotiations stalled over granting the US greater market access in agricultural products.

Energy, along with arms, is a low-hanging fruit for an India-US trade reset. Dependence on Russian energy was brought on by Western sanctions following the outbreak of war in Ukraine. The global oil market would have been upended had India not stepped up imports of Ural crude replacing traditional suppliers in the Persian Gulf. The only way the US can alter the situation is by offering its own energy exports to India as support. Washington does not have enough influence over oil-producing nations to get them to keep prices stable and force India off Russian crude at the same time. In the event, the LPG export order represents a US acceptance of economic reality and India's determination to pursue an independent energy security policy.

Food and energy security are among India's major concerns, and it is bound to oppose pressure from any quarter that might make either item more expensive for Indian consumers. Food prices are a more sensitive area and Indian negotiators will find it easier to make concessions over energy imports. The US side will likewise be able to achieve its intended outcome without having to push deeper into no-go areas in farm trade.

THE HINDU

Date: 19-11-25

Bad tidings

The problems with India's mines are deep and structural

Editorial

Sonbhadra is a name that indicates wealth and good tidings. As a part of a region straddling Uttar Pradesh, Chhattisgarh, Bihar, Jharkhand and Madhya Pradesh — arguably India's richest in terms of mineral resources though not in human development — this district in Uttar Pradesh is also India's energy capital. It is home to some 6,000 MW of coal plant capacity — nearly half of all of Tamil Nadu's. On Saturday, a stone quarry collapsed over nearly a dozen workers in Obra in the district. The death toll is mounting even as hopes are still alive that some may have survived. The State government has ordered a three-tier probe by the district administration, the police and the mining department. An FIR has been filed against the quarry owner alleging negligence of safety protocols. But if there were indeed violations, what was the government doing? State disaster response workers reached the site from Mirzapur, making a case for their local stationing in an area that has over a dozen stone quarries and other mines such as coal along the Vindhyas-Kaimur hill range. Questions have been raised about the level of safety training of workers and them having adequate safety gear.

But the problems are deeper and structural.

Opposition allegations of rampant illegal quarrying are not fanciful stuff. Stone quarries represent the lowest end of mining, and often the least safety conscious. Stone quarry contractors are often small-time operators. Ideally, micro geological studies need to be done to plan the cutting. These studies will clearly flesh out the weak joints and fracture lines on hill slopes where cutting should be avoided. The government may do broad and general geological studies at the macro level before leasing the blocks. But once contracts are given out, micro studies, say at the square kilometre level, are rarely done by the individual contractors. It is just luck that there are not many more accidents, geologists point out.

Blasting design is a science that accurately assesses the size and throw of explosives needed and, therefore, at what distance the explosives should be set off. But explosive size and distance are often just rule of thumb decisions. Such open mines need to be benched — small horizontal plateaus cut along the slope of a hill. This ensures safety and decreases chances of a wholesale quarry collapse, as in Obra. Investigators will need to find out to what extent these basic measures were followed not just at the site but across the region. Ironically enough, some of the best minds and technologies are available at IIT (ISM) Dhanbad. Whether there is political will to leverage them fully in the area is the bigger question.

दैनिक भास्कर

Date: 19-11-25

एसआईआर की प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए

संपादकीय

चुनाव आयोग ने देश में मतदाता सूची के शुद्धिकरण के लिए विशेष सघन पुनरीक्षण (एसआईआर) शुरू किया है। लेकिन इसकी प्रक्रिया आसान होनी चाहिए। तकनीकी के दौर में यह संभव है। लेकिन पता चला है कि न तो बीएलओ को यह समझ में आ रहा है, न ही आम जनता 2003 के पहले के अपने ब्योरे दे पा रही है। आयोग की वेबसाइट अस्पष्ट होने की आम शिकायत है । जटिल प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ एलओ और मतदाता एक-दूसरे की शिकायत कर रहे हैं। खबरों के अनुसार दक्षिण और उत्तर भारत के दो राज्यों में दो बीएलओ आत्महत्या कर चुके हैं। अधिकांश मामलों में स्थानीय नेता अपने हिसाब से नामों को हटाने या बढ़ाने की रिपोर्ट बनवा रहे हैं। बीएलओ अध्याय 1 के बिंदु 4 में घर-घर जाकर सर्वे का प्रावधान है, लेकिन शायद ही ऐसा हो रहा है। तमाम सर्वे रिपोर्ट्स पर आज भी संशय इसीलिए है क्योंकि कर्मचारी घर-घर जाकर वस्तुस्थिति पता नहीं करते । अनेक सर्वे इसलिए सही स्थिति नहीं बता सके क्योंकि सर्वेयर गांव के सबसे संपन्न या दबंग व्यक्ति के आतिथ्य का आनंद लेता हुआ गांव के लोगों को वहीं बुलवा लेता था। ऐसे में सवाल पूछे जाने पर ग्रामवासी अन्य लोगों की मौजूदगी में वास्तविक वस्तुस्थिति नहीं बताता था। अक्सर एक दबंग के घर दूसरा आने को तैयार नहीं होता था। ऐसे में एसआईआर प्रक्रिया को सहज करना होगा। बीएलओ को समुचित ट्रेनिंग के साथ सख्त निर्देश हो कि हर घर पर जाने, फॉर्म भरवाने आदि की पुख्ता सूचना आयोग को भेजे ।

Date: 19-11-25

दुनिया सत्ताधीशों को बदल रही है पर भारत में ट्रेंड उल्टा

रुचिर शर्मा, (ग्लोबल इन्वेस्टर व लेखक)

विकसित लोकतंत्रों में दो दशक पहले तक सत्ताधारी ही अधिकतर जीतते थे, लेकिन अब 75% अवसरों सरकारें बदल जाती हैं। भारत में इसका उलटा हो रहा है। यहां सत्ताधारी 2000 के दशक से पहले ज्यादातर राज्यों में चुनाव हारते थे। लेकिन इस दशक में वे 55% बार जीते हैं और अगर कांग्रेस को छोड़ दें तो 73% बार यह तब ठीक होता, जब मतदाता अच्छे शासन के लिए नेताओं को पुरस्कृत करते। लेकिन हाल के नतीजे तो कुछ और ही इशारा करते हैं कर्नाटक और तेलंगाना जैसे समृद्ध दक्षिणी राज्यों में सत्ताधारी दलों के हारने की संभावना अधिक है और बंगाल व बिहार जैसे पिछड़े इलाकों में जीतने की संभावना ज्यादा।

बिहार में एनडीए की जीत इसका ताजा उदाहरण है। यह कोई अच्छा संकेत नहीं है, खासकर एक ऐसे राज्य में जहां प्रगति की रफ्तार थमी हुई है और मुख्यमंत्री के पास आर्थिक विकास को गति देने के कोई नए विचार नहीं हैं। पिछले 30 वर्षों से मैं हर साल भारत के राष्ट्रीय और राज्य चुनावों को कवर करता रहा हूं। यह बिहार की मेरी छठी यात्रा थी। मुझे लग रहा था कि लोग एक ऐसे मुख्यमंत्री के प्रति गहरी निराशा जताएंगे, जिन तक लोगों की सीधी पहुंच लगातार घटती जा रही है और राज्य में गरीबी का स्तर अफ्रीकी देशों के बराबर होता जा रहा है। लेकिन मैंने पाया कि आम मतदाता नीतीश द्वारा अतीत में किए कार्यों के लिए आभारी हैं। कई लोगों ने मुझसे कहा कि उनके बिगड़ते स्वास्थ्य के मद्देनजर उन्हें सत्ता से बेदखल कर देना अशिष्टता होगी।

2005 में नीतीश के सत्ता में आने से पहले, 13.5 करोड़ की आबादी वाला यह राज्य 'सभ्यता के द्वारा भुला दिया गया स्थान' और एक अराजकतापूर्ण 'जंगल राज' के रूप में जाना जाता था। अपने पहले कार्यकाल में नीतीश ने सड़कें और

पुल बनवाईं। दूसरे में ग्रामीण इलाकों में बिजली पहुंचाई। लेकिन अपने पिछले दो कार्यकालों में वे राज्य को विकास की अगली सीढ़ी चढ़ाने और वहां नए उद्योग लगवाने में नाकाम रहे।

बिहार में लगभग 1,000 मील की अपनी यात्रा के दौरान हम इस राज्य में व्याप्त गरीबी की गहराई से स्तब्ध रह गए। राज्य का प्रमुख निर्यात 'उद्योग' मखाना प्रोसेसिंग है। पूर्णिया के आसपास हमने मजदूरों को मखाना निकालने के लिए गंदे पानी में गोता लगाते, उन्हें हथौड़ों से तोड़ते और आग पर भूनते देखा । मेरे साथी यात्रियों को आश्चर्य हुआ कि सरकार मखाना प्रोसेसर्स को मशीनों और भट्टियों में निवेश करने में मदद क्यों नहीं करती। मनेर में जब हमने बिचौलियों को बच्चों को गर्दन तक कूड़े से भरे तालाब में उतरने के लिए पैसे देते और अपनी मांओं के सामने मछलियां ढूंढते देखा, तो मेरे एक वरिष्ठ साथी का गला रूंध गया। वास्तव में अगर बिहार एक देश होता, तो लाइबेरिया के बाद यह दुनिया का 12वां सबसे गरीब देश होता।

लेकिन नीतीश ने इसका सामना सरकारी खर्च को और बढ़ाकर किया। बिहार का कुल सरकारी खर्च राज्य के जीडीपी का 34% है, जो औसत से लगभग दोगुना है। इसका आधा हिस्सा समाज कल्याण के व्यय में जाता है। नीतीश को मिली जीत में इस खर्च को बढ़ाने के वादे का भी योगदान है। उनकी चुनाव पूर्व खर्च योजनाओं का कुल योग राज्य के जीडीपी का 3% था।

पूरे भारत में ही यह तेजी से आम बात होती जा रही है। उम्मीदवार यह देखने के लिए होड़ लगाते हैं कि कौन सबसे ज्यादा सौगातें दे सकता है, लेकिन बिहार इस शाहखर्ची को बर्दाश्त नहीं कर सकता। सबसे ज्यादा घाटे वाले राज्यों में से एक होने के कारण यह सड़कों और कारखानों सहित अन्य जगहों पर कटौती किए बिना नए व्यय का वित्तपोषण नहीं कर सकता। और आज के इन खर्चों को प्राथमिकता देने का मतलब कल के विकास को धीमा कर देना है।

आधुनिकता ने इस 'वेलफेयर ट्रैप' को और जटिल बना दिया है। भारत ने सरकारी सेवाओं की डिलीवरी को डिजिटल बना दिया है, जिससे वे बिचौलिये हट गए हैं, जो भुगतान का बड़ा हिस्सा हड़प लेते थे। लेकिन अब राजनेता इसी नेटवर्क का इस्तेमाल चुनाव के समय मतदाताओं को तेजी से नकद राशि पहुंचाने के लिए करते हैं, जो एक तरह से उनका वोट खरीदना है।

Date: 19-11-25

बिहार से अंता तक अब जातीय खांचों में कैद नहीं रहे मतदाता

राजेंद्र राठौर

बिहार चुनाव और राजस्थान में उपचुनाव परिणाम लिए दो विपरीत दिशाओं में संकेत ले कर आया। बिहार की विधानसभा में भाजपा-एनडीए गठबंधन ने जिस ऐतिहासिक विजय का परचम लहराया, उसने स्पष्ट कर दिया कि वहां के मतदाताओं ने जाति आधारित राजनीति की पुरानी सीमाओं को तोड़ दिया है। इसके विपरीत, राजस्थान के अंता उपचुनाव में भाजपा को मिली हार ने यह भी रेखांकित किया कि स्थानीय अपेक्षाओं, क्षेत्रीय मुद्दों और जमीनी नेतृत्व को

समझकर आगे बढ़ने में जीत का फॉर्मूला है। इन दोनों राज्यों के परिणाम एक नए राजनीतिक युग की ओर संकेत करते हैं, जहां जा मीमांसा नहीं, बल्कि सुशासन, विकास व जवाबदेही निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

बिहार ने दशकों बाद एक बार फिर सिद्ध किया है। कि जब शासन का मॉडल पारदर्शिता और विकास पर आधारित हो, तब मतदाता जातीय खांचों में कैद नहीं रहता। 90 के दशक का वह बिहार, जो कभी अगड़ा- पिछड़ा संघर्ष, नरसंहारों और जातीय ध्रुवीकरण का पर्याय बना हुआ था, इस बार अपने मताधिकार के माध्यम से बिल्कुल नया संदेश दे गया है। वहां महागठबंधन ने जिस जातीय जोड़-तोड़ की राजनीति पर अपनी रणनीति टिका रखी थी, उसे मतदाताओं ने खारिज कर स्पष्ट कर दिया कि अब लोकतंत्र में जाति-कारक निर्णायक नहीं, बल्कि गौण हो रहा है। यह परिवर्तन विशेष रूप से महिलाओं द्वारा दिए गए अभूतपूर्व समर्थन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पुरुषों की तुलना में 9 प्रतिशत अधिक महिला मतदान ने प्रमाणित किया कि बिहार में एनडीए सरकार के तहत लागू योजनाओं, विशेष रूप से महिलाओं के लिए प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, शराबबंदी जैसे सामाजिक सुधार और सुरक्षा व सम्मान के माहौल ने उनकी जीवन गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया।

बिहार का परिणाम संकेत देता है कि देश में अब 'विकास बनाम जाति' की लड़ाई में मतदाता अधिक परिपक्व होकर निर्णय ले रहा है। राजनीतिक दलों के लिए स्पष्ट संदेश है कि अब केवल जातीय गणित को साथ लेने से जीत सुनिश्चित नहीं होती। जनता अब काम देखती है, नीयत पर विश्वास करती है और अपने जीवन पर पड़े सकारात्मक प्रभाव को प्राथमिक तौर पर महत्व देती है। इसके उलट राजस्थान के अंता उपचुनाव का परिणाम एक अलग प्रकार की राजनीतिक जटिलता को सामने लाता है। यह चुनाव इस धारणा को चुनौती देता है कि किसी भी क्षेत्र में कोई जाति स्थाई रूप से किसी दल की समर्थक बनी रहती है। राजनीतिक विश्लेषक इस चुनाव में जिसे सबसे निर्णायक सामाजिक समूह मान रहे थे, उसने जातीय समीकरण को ध्यान में रखते हुए उतारे गए उम्मीदवार को अपेक्षित समर्थन नहीं दिया। यह बदलाव पुष्टि करता है कि मतदाता अब समाजशास्त्रीय पहचान से अधिक भिन्न कारकों पर वोट डालता है, जिसे आसानी से किसी जातीय समीकरण में डालकर जीत का फॉर्मूला तैयार नहीं किया जा सकता। अंता में अन्य दिलचस्प पहलू निर्दलीय उम्मीदवार द्वारा प्राप्त वोट न केवल बड़ी पार्टियों के परंपरागत आधार में सेंध लगाने वाले थे, बल्कि यह भी दर्शाते हैं कि पिछड़ी जातियों के भीतर भी अब एकजुटता का पारंपरिक स्वरूप टूट रहा है। स्थानीय नेताओं की व्यक्तिगत आकांक्षाएं और प्रतिस्पर्धाएं एक नए प्रकार का राजनीतिक समीकरण गढ़ रही हैं, जिसमें बड़े दलों की पारंपरिक रणनीतियां अप्रभावी हो रही हैं। यह भी एक संकेत है कि राजनीतिक दलों को अब अपने संगठन के भीतर ऐसे संवाद तंत्र विकसित करने होंगे, जिनसे स्थानीय असंतोष या प्रतिस्पर्धा समय रहते संतुलित की जा सके।

जातीय आधार पर खड़े किए गए पुराने समीकरणों का दौर अब समाप्त हो रहा है। मतदाता आज अधिक स्वतंत्र, सचेत और उत्तरदायी है। भारतीय लोकतंत्र का यह नया अध्याय आने वाले वर्षों में और भी निर्णायक परिवर्तनों की ओर बढ़ने का संकेत दे रहा है।

दैनिक जागरण

Date: 19-11-25

जलवायु संकट बढ़ाते विकसित देश

आदित्य सिन्हा, (लेखक लोक-नीति विश्लेषक हैं)

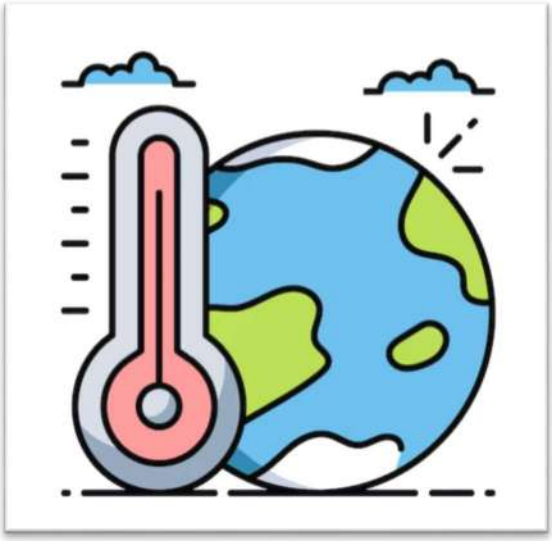

ब्राजील के बेलम में आयोजित काप 30 सम्मेलन ने जलवायु परिवर्तन पर विकसित देशों की गहरी असंवेदनशीलता को ही उजागर किया है। जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए वैश्विक प्रयासों को करीब तीन दशक हो चले हैं। इस कड़ी में संयुक्त राष्ट्र की पहल पर आयोजित होने वाले काप सम्मेलन अपनी भूमिका पर खरे नहीं उतर पा रहे। ये वार्षिक सम्मेलन विरोधाभासों का मंच बनकर रह गए हैं।

ऐतिहासिक रूप से दुनिया के सबसे बड़े प्रदूषक रहे विकसित देश स्थितियों को सुधारने के लिए शेष विश्व से अपेक्षाएं तो बहुत कर रहे हैं, लेकिन उन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने की तत्परता नहीं दिखा रहे। विकासशील देशों का कहना है कि उन्हें वार्षिक 1.3 ट्रिलियन (लाख करोड़) डालर की आवश्यकता है। जबकि विकसित देशों ने 2035 तक केवल 300 अरब डालर का ही वादा किया है। इसमें भी अधिकांश राशि ऋण के रूप में दी जाएगी। स्वाभाविक है कि इससे गतिरोध की स्थिति और गहराएगी।

बेलम सम्मेलन ने दर्शाया कि संयुक्त राष्ट्र प्रणाली उन प्रक्रियाओं और सहमति नियमों के बोझ तले दब रही है, जो कुछ देशों को मनमानी की गुंजाइश देती है। यूरोपीय संघ को ही देखें तो उसने जलवायु परिवर्तन से जुड़े वादों और उनकी पूर्ति में भारी अंतर पर विमर्श के बजाय अपने कार्बन सीमा समायोजन तंत्र यानी सीबैम को वाजिब ठहराने पर ही अधिक जोर दिया। सीबैम विकासशील देशों के लिए ग्रीन टैरिफ की तरह है, जो मुख्य रूप से यूरोपीय उद्योगों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए तैयार किया गया है। सभी प्रमुख निर्यातकों ने चेतावनी दी है कि एकतरफा उपाय पूरी प्रणाली को नुकसान पहुंचाएंगे। इसके बावजूद यूरोपीय संघ संरक्षणवाद को प्राथमिकता देने में लगा है। अमेरिका की टैरिफ नीति पहले ही वैश्विक विश्वास पर आघात कर रही हैं। जलवायु कूटनीति अब व्यापार एवं भू-राजनीति के साथ टकरा रही है।

विकसित देशों के दोहरे रवैये और भू-राजनीतिक अस्थिरता के वर्तमान परिदृश्य में भारत गंभीर, न्यायसंगत और सिद्धांत आधारित राह दिखा रहा है। इस कड़ी में पहला बिंदु है समानता और जलवायु न्याय पर जोर देना। भारत ने दुनिया को स्मरण कराया कि पेरिस समझौते के स्वरूप को एकाएक नहीं बदला जा सकता। भारत ने दोहराया कि विकसित और विकासशील देशों में विकास के स्तर पर जमीन-आसमान का अंतर है और इस लिहाज से साझा उत्तरदायित्व के प्रयास को कमजोर करना भरोसे को कुंद करने का काम करेगा। इस दिशा में मांग एकदम सरल है कि जो देश पहले से और भारी मात्रा प्रदूषण करते हैं, उन्हें उत्सर्जन में कटौती के साथ ही विकासशील देशों का अपेक्षित समर्थन भी करना चाहिए। भारत ने जोर दिया है कि विकसित देशों को 2050 से बहुत पहले ही नेट जीरो यानी शून्य उत्सर्जन के स्तर तक पहुंच जाना चाहिए, ताकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए उचित आधार तैयार हो सके। इसके अभाव में वैश्विक जलवायु ढांचा असमानता बढ़ाने का एक माध्यम ही बनकर रह जाता है।

भारत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उपलब्ध कराए जा रहे वित्तीय संसाधन खैरात न होकर अनुच्छेद 9.1 के तहत एक कानूनी दायित्व है। उसने जलवायु वित्त की एक सार्वभौमिक रूप से सहमति प्राप्त परिभाषा, अनुकूलन वित्त में 15 गुना वृद्धि और पूर्वानुमानित रियायती संसाधन प्रवाह की मांग की है। इसमें अरबों नहीं खरबों डालर चाहिए होंगे। इस क्रम में भारत ने निजी वित्त या ऋण एवं भारी पैकेजों पर निर्भर रहने की भ्रांति को भी उजागर किया है। ऐसे उपाय ऋण संकट को ही बढ़ाते हैं। इसलिए वास्तविक अनुदान को वरीयता दी जानी चाहिए। दुनिया विकासशील देशों से केवल यही उम्मीद नहीं कर सकती कि वे अपनी ऊर्जा प्रणालियों को बदलें और कृषि को लचीला बनाएं। इस सबके फेर में हो यह रहा है कि विकासशील देश महंगे कर्जों का ऊंचा ब्याज चुकाने में लगे हैं।

भारत का दृष्टिकोण है कि प्रौद्योगिकी उपलब्धता एक अधिकार होना चाहिए न कि सौदेबाजी का जरिया। जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए जिन प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है, वे बौद्धिक संपदा अधिकारों की आड़ में विकासशील देशों के लिए पहुंच से बाहर हो जाती हैं। इसलिए बौद्धिक संपदा और बाजार बाधाओं को दूर किया जाए। यह तो वही स्थिति हुई कि समाधान पहले से मौजूद है, लेकिन उसकी उपलब्धता में अवरोध से समस्या को ही बढ़ाया जा रहा है। यह किसी लापरवाही से कम नहीं। भारत ने सीबैम जैसे एकतरफा जलवायु टैरिफों की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया कि ये न केवल अनुच्छेद 3.5 का उल्लंघन करते हैं, बल्कि जलवायु नीति को संरक्षणवाद के हाथों का खिलौना भी बना देते हैं। भारत ने स्पष्ट रूप से चेताया कि ऐसे उपायों से बहुपक्षीयता की भावना को चोट पहुंचती है। इनके जरिये उन देशों को निशाना बनाया जाता है, जिन्हें सतत विकास के लिए नीतिगत उपायों की आवश्यकता होती है।

जलवायु परिवर्तन की विकराल होती समस्या के समाधान में भारत की कथनी एवं करनी में भी भेद नहीं है। उसकी उपलब्धियां उसके प्रति भरोसे का निर्माण करती हैं। आंकड़े दर्शाते हैं कि 2005 के बाद से भारत ने उत्सर्जन की तीव्रता को 36 प्रतिशत से अधिक कम किया है और गैर-जीवाश्म क्षमता के लिए निर्धारित 2030 के लक्ष्य को पांच साल पहले ही हासिल कर लिया। भारत ने 256 गीगावाट से अधिक की स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन क्षमता विकसित है। हाइड्रोजन, परमाणु ऊर्जा और जैव ईंधन में गहरी छाप छोड़ने वाले मिशन शुरू किए हैं। सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से दो अरब से अधिक पेड़ लगाए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन जैसे कई वैश्विक मंचों के नेतृत्व से भी जुड़ा है।

कॉप के इस सम्मेलन का अभी तक यही सार सामने आ रहा है कि जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने की संक्रमण अवधि के बीच व्यापार युद्ध जैसी स्थितियों के साये में समृद्ध देश अपनी आवश्यक भूमिका से किनारा कर रहे हैं। जबकि भारत ने दिखाया है कि ईमानदार राह कैसी होती है। सवाल यह है कि क्या विकसित दुनिया इसे अपनाने के लिए तैयार है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 19-11-25

विकासशील देशो के लिए जलवायु फण्ड की राह होगी आसान

राकेश मोहन जनक राज, (लेखक सीएसईपी, नई दिल्ली में क्रमशः मानद अध्यक्ष और वरिष्ठ फेलो हैं)

ब्राजील के बेलेम में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (कॉप 30) जारी है। इस सम्मेलन में वैज्ञानिक और तकनीकी मुद्दों पर चर्चा के अलावा, इस बार के विमर्श का एक बड़ा मुद्दा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और अनुकूलन के लिए जरूरी संसाधनों पर केंद्रित होने की उम्मीद है। हालांकि इस तरह की फंडिंग लागतों के अनुमान, समय के साथ कम हुए हैं, लेकिन अब भी बहुत ज्यादा हैं जिसका अर्थ यह है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं से उभरते बाजारों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को बड़े वित्तीय हस्तांतरण की आवश्यकता है।

हाल के अध्ययनों ने उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए वर्ष 2030 तक प्रति वर्ष 1 से 4 लाख करोड़ डॉलर की जलवायु फंडिंग की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया है। यह आंकड़ा इतना चुनौतीपूर्ण माना जा रहा है कि सम्भवतः जितनी कार्रवाई की जा सकती थी, उससे भी कम कार्रवाई हो सकेगी। साथ ही, ये अनुमान 'टॉप-डाउन' दृष्टिकोण पर आधारित हैं और सेक्टर तथा क्षेत्रीय विवरणों की बेहतर समझ के लिए इनका विश्लेषण करना कठिन है।

'नौ जी20 ईएमई की जलवायु वित्त आवश्यकताएं: पहुंच 1 के भीतर' शीर्षक वाले हमारे अध्ययन में 9 जी20 उभरते बाजार वाली अर्थव्यवस्थाओं जैसे कि अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन, इंडोनेशिया, भारत, मेक्सिको, रूस, दक्षिण अफ्रीका और तुर्किये की वर्ष 2030 तक की जलवायु वित्त आवश्यकताओं का अनुमान लगाया गया है। हमारे अनुमान की कई बारीकियां हैं और इसमें सामान्य परिस्थितियों में जरूरी निवेश से अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन से जुड़े बचाव के लिए आवश्यक निवेश की बात शामिल है।

इस अध्ययन से पता चलता है कि इन 9 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को वर्ष 2022 और 2030 के बीच चार क्षेत्रों (बिजली, सड़क परिवहन, स्टील और सीमेंट) के लिए 2.2 लाख करोड़ डॉलर का अतिरिक्त जलवायु फंड चाहिए होगा, जिसका वार्षिक औसत 255 अरब डॉलर होता है। यह इन 9 अर्थव्यवस्थाओं के संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 0.6 फीसदी के बराबर है जो एक व्यवहारिक दायरे में है। यदि यह मान लिया जाए कि अध्ययन में शामिल नहीं किए गए बाकी 50 प्रतिशत क्षेत्रों में उत्सर्जन में कमी की लागत इन अनुमानों के अनुरूप है तब भी कुल वार्षिक लागत केवल 0.5 लाख करोड़ डॉलर से थोड़ी अधिक होगी।

उत्सर्जन में कमी पर अधिकांश चर्चा, ऊर्जा माध्यमों बदलाव की आवश्यकताओं पर केंद्रित रही है। इसके विपरीत, हमारे अध्ययन में पाया गया है कि 1.2 लाख करोड़ डॉलर (कुल आवश्यकता का 52 फीसदी) का सबसे बड़ा हिस्सा स्टील क्षेत्र के लिए जरूरी है और इसके बाद सड़क परिवहन (460 अरब डॉलर) और सीमेंट (450 अरब डॉलर) जैसे क्षेत्र का स्थान है। स्टील और सीमेंट ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें उत्सर्जन कम करना कठिन है और इनके लिए मुख्य रूप से कार्बन कैप्चर एवं स्टोरेज (सीसीएस) तकनीक का उपयोग आवश्यक है, जिसे लगाना महंगा है लेकिन इस स्तर पर यही एकमात्र व्यवहारिक तकनीकी विकल्प उपलब्ध है। ऐसे में उन्हें कुल अनुमानित जलवायु फंड के सबसे बड़े हिस्से की जरूरत है।

बिजली क्षेत्र के लिए केवल 150 अरब डॉलर की आवश्यकता का अनुमान है, जिसमें स्टोरेज (पंप और बैटरी स्टोरेज) के लिए 28 अरब डॉलर शामिल हैं, लेकिन इसमें अतिरिक्त ग्रिड लागत शामिल नहीं है।

हमारे अनुमान बाकी सभी अनुमानों से कम हैं क्योंकि पहली बात यह है कि हमारे अध्ययन ने सामान्य परिस्थितियों में जीवाश्म ईंधन आधारित बिजली स्रोतों पर पूंजीगत व्यय में होने वाली बचत को ध्यान में रखा है जिस पर किसी दूसरे अध्ययन में विचार नहीं किया गया है। दूसरा, उत्पादन के बढ़ते पैमाने, अनुसंधान एवं विकास और तकनीकी सफलताओं

के कारण अक्षय ऊर्जा की पूंजीगत लागत में तेजी से गिरावट आई है। इस प्रकार, सामान्य धारणा के विपरीत, ऊर्जा माध्यमों के बदलाव के लिए इन सभी 9 अर्थव्यवस्थाओं के चार क्षेत्रों में से सबसे कम जलवायु फंड की आवश्यकता है।

डीजल-पेट्रोल इंजन वाहनों से इलेक्ट्रिक वाहनों में बदलाव के लिए सड़क परिवहन क्षेत्र के लिए जलवायु फंड का अनुमान 5 अरब डॉलर है। इसका मुख्य कारण यह है कि चीन में वर्ष 2022 और 2030 के बीच वाहन बिक्री में 15 फीसदी की गिरावट आ सकती है। हालांकि, 9 अर्थव्यवस्थाओं को चार्जिंग से जुड़े बुनियादी ढांचा तैयार करने के लिए ऐसा अनुमान है कि 465 अरब डॉलर के बड़े पूंजीगत खर्च की आवश्यकता होगी। इस बड़ी लागत का एक बड़ा हिस्सा चीन के कारण है जो तेज रफ्तार वाले चार्जिंग स्टेशन बना रहा है जिसकी लागत अन्य जगहों पर तैयार किए गए धीमी गति के चार्जर से लगभग सात गुना अधिक है।

अर्थव्यवस्था के स्तर पर, चीन की जलवायु फंड जरूरतें 1,340 अरब डॉलर (सभी 9 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कुल जरूरत का 61 फीसदी या सालाना 155 अरब डॉलर यानी उसकी जीडीपी का 0.7 फीसदी हिस्सा) की हैं जो सबसे अधिक है। इसका मुख्य कारण स्टील और सीमेंट उत्पादन में उसकी दबदबे वाली हिस्सेदारी है। भारत के लिए आवश्यक जलवायु वित्त का अनुमान लगभग 470 अरब डॉलर (55 अरब डॉलर सालाना या जीडीपी का 1.3 फीसदी) है जो चीन के बाद 9 उभरती अर्थव्यवस्थाओं में दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता है। चीन और भारत को छोड़कर, शेष सात अर्थव्यवस्थाओं के लिए जलवायु वित्त आवश्यकताएं वर्ष 2022 - 2030 के लिए अनुमानतः 390 अरब डॉलर या सालाना 45 अरब डॉलर (जीडीपी का 0.3-0.7 फीसदी) है।

अध्ययन से पता चलता है कि 9 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए बिजली, स्टील और सीमेंट क्षेत्र के लिए अनुमानित जलवायु फंड से 33 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। 9 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में प्रति टन कार्बन डाइऑक्साइड को खत्म करने की औसत लागत अनुमानित स्तर पर 53 डॉलर है। प्रति यूनिट लागत के मामले में बिजली क्षेत्र कार्बन घटाने के लिए सबसे महंगा है (66 डॉलर प्रति टन कार्बन डाइऑक्साइड), इसके बाद स्टील क्षेत्र (53 डॉलर प्रति टन कार्बन डाइऑक्साइड) और फिर सीमेंट क्षेत्र (49 डॉलर प्रति टन कार्बन डाइऑक्साइड) का स्थान है।

संक्षेप में, हमारे अध्ययन के अनुमान अन्य अध्ययनों की तुलना में बहुत कम हैं लेकिन ये व्यवहारिकता के दायरे में हैं। कॉप 30 का समापन उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में उत्सर्जन में कमी के लिए जरूरी संसाधनों के प्रबंधन की अपेक्षाओं से जुड़े आशावाद की भावना के साथ होना चाहिए।

जनसत्ता

Date: 19-11-25

सहमति और संभावना

संपादकीय

भारत और अमेरिका के बीच व्यापार वार्ता के जल्दी ही किसी निष्कर्ष तक पहुंचने की उम्मीद की जा रही है, लेकिन इसके समांतर दोनों देशों में कई अन्य मुद्दों पर भी सहमति बनती देखी जा रही है। अगर कुछ अहम बिंदुओं पर बातचीत परस्पर हित पर आधारित समझौते तक पहुंचती है, तो इससे व्यापार वार्ता भी एक ठोस स्वरूप में सामने आएगी। इस क्रम में जहां अमेरिका के सख्त रुख में नरमी देखी जा रही है, वहीं भारत भी अपने व्यापक हित के मद्देनजर व्यावहारिक फैसले ले रहा है। गौरतलब है कि दोनों देशों के बीच रसोई गैस के मसले पर एक ऐतिहासिक समझौता हुआ है, जिसे आने वाले दिनों में अमेरिका की शुल्क नीति के प्रभाव से आगे बढ़ते हुए एक नए अध्याय की शुरुआत के तौर पर देखा जा रहा है। इस समझौते के तहत भारत अमेरिका से लगभग 2.2 मिलियन टन रसोई गैस खरीदेगा। हालांकि यह भारत की सालाना जरूरत का मात्र दस फीसद है और यह समझौता केवल एक वर्ष के लिए ही है, लेकिन इस सहमति को एक व्यापक समझौते की पृष्ठभूमि माना जा सकता है।

यह छिपा नहीं है कि तेल की कीमतों के मामले में अंतरराष्ट्रीय बाजार पर निर्भरता की वजह से रसोई गैस के दाम में कैसे उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। अब इस समझौते के अमल में आने के बाद भारत के सामने नए विकल्प खुलेंगे और रसोई गैस की आपूर्ति का जोखिम कम होगा। यह समझौता भारत की तीन सरकारी तेल कंपनियों ने अमेरिकी उत्पादकों के साथ किया है। अब अगर किन्हीं हालात में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कीमत में कोई उतार-चढ़ाव आता है, तो वैसी स्थिति में भारत पर इसका असर सीमित होगा। इसके अलावा, अगर अगले वर्ष रसोई गैस और तेल के वैश्विक बाजार में किसी तरह की उथल-पुथल होती है, तो भारत के सामने इस मामले में स्थिति को संभालने के लिए एक वैकल्पिक इंतजाम होगा। कहा जा सकता है कि भारत अपनी ऊर्जा सुरक्षा और जरूरतों के मद्देनजर एक नई रणनीति के साथ अपने कदम आगे बढ़ा रहा है। इसका असर पिछले कुछ समय से टकराव की स्थिति तक पहुंच चुके भारत-अमेरिका संबंधों में फिर से गर्माहट के रूप में सामने आ सकता है। साथ ही भारतीय उपभोक्ताओं को कीमतों में स्थिरता के रूप में आर्थिक सुरक्षा मिलेगी और सार्वजनिक कंपनियों की स्थिति मजबूत होगी।

भारत और अमेरिका के बीच इस समझौते की अवधि भले ही एक वर्ष है, लेकिन इससे दोनों देशों के बीच व्यापार वार्ता के एक बेहतर निष्कर्ष तक पहुंचने की उम्मीद बंधी है। इसके संकेत इस रूप में भी सामने आए हैं कि अमेरिका ने भारत के काफी, चाय, मसाले, फल आदि कुछ उत्पादों पर लगे शुल्क को वापस लेने की घोषणा की है। इससे भारत के कृषि निर्यात को बड़ी राहत मिलेगी। मगर इसका दूसरा पहलू यह भी है कि खुद अमेरिका में कई वस्तुओं की मांग में गिरावट दर्ज की जा रही थी और शुल्क के मसले पर सख्त रवैया खुद उसके आर्थिक हितों के अनुकूल नहीं था। इस लिहाज से देखें तो अमेरिका के रवैये में आए बदलाव में वहां बन रही परिस्थितियों की भी भूमिका है। अब भारत के साथ रसोई गैस पर बनी ताजा सहमति को दोनों देशों के बीच नई संभावनाओं के तौर पर देखा जा रहा है। मगर अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप जिस तरह रूस से तेल खरीद को लेकर अन्य देशों पर शर्तें थोपने की कोशिश कर रहे हैं, अगर उसके दायरे में भारत को भी रखा गया, तो उससे एक नई अड़चन पैदा होगी।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 19-11-25

सीमा पर कट्टरता से कितना घिरेगा भारत

संजय के भारद्वाज, (प्रोफेसर, जेएन्यू)

बांग्लादेश की पूर्व प्रधानमंत्री शेख हसीना को वहां के 'इंटरनेशनल क्राइम ट्रिब्यूनल' से मिली फांसी की सजा बदले की राजनीति से प्रेरित है। इसके पीछे उसी 'सिंडिकेट' का हाथ है, जो बांग्लादेश की आजादी के विरुद्ध था, जिसमें जमात-ए-इस्लामी जैसी बांग्लादेश की कट्टरपंथी पार्टी व पाकिस्तान शामिल हैं। बाहरी ताकतें (अमेरिका की कथित भूमिका) घरेलू अराजक तत्वों (संकीर्णवादी या कट्टरवादी) की मदद से किस तरह किसी देश को अस्थिर करती हैं, यह उसका इकलौता उदाहरण नहीं है। पाकिस्तान, श्रीलंका और नेपाल जैसे देशों में भी हम ऐसा देख चुके हैं। यह हमारे लिए शुभ नहीं है। ऐसी उथल-पुथल से वहां कट्टरवादी ताकतें मजबूत हुई हैं, जिनसे नई दिल्ली के सामने सामरिक व रणनीतिक चुनौतियां बढ़ गई हैं।

बांग्लादेश आज जिस मुकाम पर है, वह एक गंभीर आसन्न खतरे का संकेत है। इस पूरे काम को तीन चरणों में अंजाम दिया गया। सबसे पहले कट्टर मजहबी विचारों का पोषण करने वाली ताकतों (जैसे- जमात-ए- इस्लामी) को मजबूत किया गया। इसमें पाकिस्तान व उसकी खुफिया एजेंसी आईएसआई की मदद ली गई और धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक ताकतों को कमजोर किया गया। इसके लिए 'अमेरिकन इंटरनेशनल रिपब्लिकन इंस्टीट्यूट' जैसे संस्थानों की मदद ली गई। आरक्षण को लेकर चले छात्र आंदोलन ने इसमें उत्प्रेरक का काम किया, जिसका लाभ उठाकर शेख हसीना को सत्ता व देश छोड़ने के लिए मजबूर किया गया।

दूसरा चरण मोहम्मद यूनुस की अगुवाई में अंजाम दिया गया। वह ग्रामीण बैंक के काम-काज को लेकर शेख हसीना के निशाने पर थे, इसलिए वह हसीना- विरोधी चेहरा थे। वह अमेरिका के करीबी भी रहे हैं और नव-उदारवादी सोच के पोषक हैं। उनकी कार्यवाहक सरकार में जितने भी सलाहकार बनाए गए, वे ज्यादातर संकीर्णवादी और कट्टरवादी सोच के हैं। इसके बाद आंतरिक संस्थागत सिंडिकेट बनाने का काम शुरू हुआ और मंत्रालयों, विश्वविद्यालयों, स्थानीय प्रशासन के महत्वपूर्ण पद कट्टरपंथियों के हवाले किए गए।

तीसरा चरण शेख हसीना को अलोकप्रिय बनाने और अवामी लीग को कमजोर करने की कोशिशों से जुड़ा था। शेख हसीना को न सिर्फ कानूनी मसलों में फँसाया गया, बल्कि उनकी पार्टी के लिए चुनाव में उतरना भी मुश्किल बनाया जा रहा है। यहां तक कि जिस इंटरनेशनल क्राइम ट्रिब्यूनल ने उनको फांसी की सजा सुनाई है, उसके जज पूर्व में ही बदले जा चुके हैं। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि यह ट्रिब्यूनल उन्होंने ही गठित की है। हां, यह सच है, मगर 1971 के अपराधियों के लिए इसे बनाया गया था।

हालांकि, यह सब करने के बावजूद अवामी लीग की लोकप्रियता घटी नहीं, बल्कि बढ़ती गई है। कई सर्वे तो यह भी बताते हैं कि इस पार्टी को अब भी 30 से 35 प्रतिशत मतदाताओं का समर्थन प्राप्त है। इसका सीधा मतलब है कि यदि आज इस देश में निष्पक्ष चुनाव होते हैं और अवामी लीग को इसमें शामिल होने दिया जाता है, तो वह उसमें अच्छा प्रदर्शन कर सकती है।

सवाल है कि कट्टरपंथियों को यूं बढ़ावा क्यों दिया जा रहा है? पाकिस्तान की मंशा स्पष्ट है। वह भारत की पूर्वी सीमा पर एक 'लघु पाकिस्तान' बनाना चाहता है। बीते कई वर्षों से वह इसकी कोशिश में जुटा है, जिसकी वेदी परशेख मुजीबुर्रहमान भी बलि चढ़ चुके हैं। इस्लामाबाद 1971 की पराजय को आज तक नहीं भूल सका है। दूसरी तरफ, अमेरिका दो वजहों से वहां के कट्टरपंथियों को प्रोत्साहित कर रहा है। पहली मुक्ति युद्ध में उसे परोक्ष रूप से कड़ी चुनौती मिली थी, और दूसरी - चीन का बढ़ता प्रभुत्व | इसके लिए उसने सबसे पहले पाकिस्तान में 'कार्रवाई' की और रूस व चीन के करीब जा रहे पूर्व प्रधानमंत्री इमरान खान को सत्ता से बेदखल करके शहबाज शरीफ की ताजपोशी करवाई। इसमें उसके लिए मोहरा बने जनरल आसिम मुनीर ।

अगली बारी श्रीलंका की थी। वहां अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का दबाव डाला गया, जिससे राजनीतिक और आर्थिक संकट पैदा हुए। नतीजतन, राजपक्षे बंधु को अराजक स्थिति में देश छोड़कर भागना पड़ा। इसके बाद 'मिशन बांग्लादेश' शुरू किया गया। चूंकि शेख हसीना से अमेरिका के अच्छे संबंध नहीं थे और बंगाल की खाड़ी में चीन का प्रभाव भी बढ़ रहा था। लिहाजा, वाशिंगटन ने पहले सेंट मार्टिन द्वीप सौंपने का दबाव ढाका पर बनाया। मगर जब उसे सफलता नहीं मिली, तो उसने कट्टरपंथ को शह देकर तख्तापलट करा दिया । अमेरिका का चौथा शिकार बना नेपाल । तत्कालीन प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली भी चीन के करीब जा रहे थे। उन्होंने न सिर्फ शंघाई सहयोग संगठन की बैठक में हिस्सा लिया था, बल्कि पश्चिमी विचारों वाले कई सोशल मीडिया मंचों को भी प्रतिबंधित कर दिया था, जिसके बाद सरकार विरोधी तत्वों को हवा दी गई।

इस तरह, दक्षिण एशिया में 'नए शीत युद्ध' की बनती परिस्थिति को बेशक उसने कुंद कर दिया है, लेकिन इसकी कीमत यहां के लोग चुका रहे हैं। यहां कट्टरपंथी जमातें हावी हो चुकी हैं। दरअसल, व्हाइट हाउस की नीति ही यही रही है। जहां उसके रणनीतिक हित सधते हैं, वहां वह कट्टरपंथ को बढ़ावा देने या गैर- जम्हूरी ताकतों को मजबूत करने से भी परहेज नहीं करता । पाकिस्तान से लेकर बांग्लादेश तक उसने यही रणनीति अपनाई है। इसलिए, हम इन देशों में कट्टरपंथ का नया उभार देख रहे हैं। मगर ऐसा करते हुए वह शायद भूल गया कि इन देशों में उसका वही हश्र हो सकता है, जो अफगानिस्तान में तालिबान ने किया है।

इसका भारत सहित पूरे क्षेत्र पर क्या असर पड़ेगा? हमें अब तक पश्चिमी मोर्चे से आतंकी गतिविधियों का खतरा था, अब पूर्वी सीमा भी संवेदनशील बन गई है। शेख हसीना ने अपने शासनकाल में चरमपंथी गुटों को उखाड़ फेंका था। मगर अब वे फिर से सक्रिय होने लगे हैं। मोहम्मद यूनुस के भारत-विरोधी रुख से उनको लगातार बल मिल रहा है।

बांग्लादेश द्वारा भारत से शेख हसीना का प्रत्यर्पण मांगना टकराव का एक नया बिंदु बन गया है। जाहिर है, भारत को मामले की संवेदनशीलता समझते हुए फैसला करना होगा। उनका प्रत्यर्पण भारत-विरोधी और कट्टरवादी ताकतों को शह देना होगा। इसके साथ-साथ नई दिल्ली को यह प्रयास भी करना होगा कि पड़ोसी देशों में उदारवादी लोकतांत्रित ताकतें मजबूती से आगे आएं। कुल मिलाकर, 'नए शीतयुद्ध' के दौर में स्वतंत्र विदेश नीति पर आगे बढ़ना सही नीति मानी जाएगी। ऐसा होने पर ही दक्षिण एशिया संघर्ष के बजाय शांति का क्षेत्र बना रह सकेगा ।

Date: 19-11-25

खेती - किसानी में बड़े बदलाव का वाहक बन रहा एआई

प्रवीण कौशल, (तकनीक और सामाजिक उद्यमी)

भारत के किसान आज ऐसे चौराहे पर खड़े है, जहां संकट और अवसर दोनों हैं चुनौतियां गंभीर है- गिरता भूजल स्तर, अनियमित मानसून, घटती जोत के साथ अनुसंधान प्रयोगशालाओं और किसानी की असलियत के बीच बढ़ता फसला । हालांकि, इन्हीं चुनौतियों वाली धरती में एक क्रांति का बीज भी निहित है, जो न केवल ट्रैक्टरों और ट्यूबवेलों से, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संचालित है। यहां यह भी देखा जा सकता है कि तकनीक कैसे शहरी शासन से लेकर स्वास्थ्य सेवा तक, रोजमर्रा की प्रणालियों को नया रूप दे सकती है।

ऐसी ही एक तकनीक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) में उस चीज को आगे बढ़ाने की क्षमता है, जिसे भारत की 'बुद्धि क्रांति' कहा जा सकता है। तीसरी हरित क्रांति, जो डिजिटल डाटा संचालित और तरह से मानवीय है। इसे जमीन पर उतारने के लिए हरियाणा में मेवात के किसान की कल्पना कर सकते हैं। उसके खेत में सेंसरों का एक छोटा सा नेटवर्क खामोशी से मिट्टी की नमी के स्तर को मापता है। इस डाटा का मृदा स्वास्थ्य रिकॉर्ड, स्थानीय मौसम पूर्वानुमान और फसल की वृद्धि अवस्था के साथ क्रॉस- रेफरेंस किया जाता है। कुछ ही सेकंड में किसान को फोन पर एक संदेश प्राप्त होता है, 'आज एक घंटे के लिए अपना पंप चलाएं।' एआई का यह प्रयास हजारों लीटर पानी बचाता है, बिजली की खपत कम करता है और मिट्टी की उर्वरता की रक्षा करता है।

किसान हमेशा से प्राकृतिक वैज्ञानिक रहे हैं। मिट्टी की बनावट, मानसून के पैटर्न और कीटों के व्यवहार का अवलोकन वे अपने अनुभव से करते रहे हैं। एआई जब किसान के जीवंत ज्ञान के साथ मिलता है, तो वह 'संवर्धित कृषि' का रूप ले लेता है। वॉयस और चैट जैसे एआई टूल्स द्वारा संचालित क्षेत्रीय भाषाओं में सलाहकार सेवाएं पहले से सक्रिय हैं। किसान अब अपनी भाषा में प्रश्न पूछ सकते हैं और तुरंत वैज्ञानिक उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। भारत को एक एकीकृत ढांचे की आवश्यकता है- एक डिजिटल सार्वजनिक संरचना, जो प्रत्येक किसान, खेत और वैज्ञानिकको जोड़े। यह मिशन कृषि- ज्ञान है, जो तीसरी हरित क्रांति को शक्ति प्रदान करने के लिए डिजाइन की गई राष्ट्रीय कृषि-बुद्धिमत्ता है। जिस तरह यूपीआई ने भारत के वित्तीय समावेशन को बदल दिया, उसी तरह कृषि ज्ञान कृषि को बदल सकता है।

इसी कड़ी में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के उस एकल खुले प्लेटफॉर्म की कल्पना करें, जो उपग्रह डाटा, आईओटी सेंसर (एक उपकरण, जो अपने आसपास से डाटा एकत्र करता है और इसे अन्य उपकरणों या प्रणालियों को भेजता है, मृदा स्वास्थ्य सूचना और एआई विश्लेषण को एकीकृत करता हो और जो छोटे से छोटे किसान से लेकर बड़े शोध संस्थान तक हर हितधारक के लिए सुलभ हो।

इस दृष्टिकोण का मूल उद्देश्य प्रत्येक क्लस्टर में एक 'ग्राम वैज्ञानिक' या फसल चिकित्सक तैयार करना है। ये डिजिटल रूप से प्रशिक्षित कृषि स्नातक एआई का चेहरा बनेंगे। ये डाटा जुटाएंगे, किसानों का मार्गदर्शन करेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि तकनीक हर किसान तक पहुंचे। इस मॉडल से एक साथ कई उद्देश्य पाए जा सकते हैं। जैसे, सटीक मार्गदर्शन और प्रीमियम बाजार तक पहुंचने से किसानों की आय दोगुनी हो सकती है, कृषि स्नातकों को ग्रामीण नौकरियां मिल सकती हैं, राष्ट्रीयकृषि- बुद्धि ग्रिड का निर्माण हो सकता है, समय पर योजनाओं के क्रियान्वयन, पारदर्शिता और

जवाबदेही में सुधार हो सकते हैं। जब यह पारिस्थितिकी तंत्र काम करना शुरू करेगा, तो शक्तिशाली, आत्म-सुदृढ चक्र शुरू होगा।

एआई का प्रभाव भंडारण और रसद से लेकर बाजार की जानकारी और मूल्य निर्धारण तक है। उदाहरण के लिए, चित्र पहचान और निकट अवरक्त स्पेक्ट्रोस्कोपी (एनआईआर) उपकरण किसानों को स्वचालित रूप से उत्पादों का मूल्यांकन करने और संस्थागत खरीदारों या डिजिटल बाजारों से सीधे जुड़ने में मदद कर सकते हैं। शहरी खुदरा क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित मूल्य निर्धारण प्रणालियां फलों और सब्जियों की कीमतों को समायोजित करती हैं। इस तरह यह एक ऐसी तकनीक है, जिसे मंडियों में अपव्यय को कम करने और निष्पक्षता में सुधार के लिए उपयोग किया जा सकता है।